आत्म-तेज

—या—

स्वामी समन्त-भद्र

[जीवन-कथा]

मत समझो इसे 'कहानी' तुम,
यह मृदु-फूलों की माला है!
जल जाए जिससे कायरता,
यह ऐसी दाहक-ज्वाला है!!
मृत्यू से हँस-हँस कर जूझो,
विघ्नों से, कष्टों से खेलो!
जागृत कर अपना आत्म-तेज,
चिर-विस्मृत स्वाभिमान लेलो!!

'भगवत'

आत्म-तेज

—या—

स्वामी समन्त-भद्र

[जीवन-कथा]

(व-तर्ज़—राधेश्याम-रामायण)

रचयिता

भगवत् स्वरूप जैन, 'भगवत्'

प्रकाशक—

श्री भगवत्-भवन पुस्तकालय,

ऐत्मादपुर (आगरा)।

मूल्य—दो आना

पहलीवार

१५ नवम्बर १९३९

अब आरहा है—

ठन्डे खून में उबाल लाने के लिए ! आपका क्या फ़र्ज़ है, यह समझाने के लिये ! और आपके दिल-दिमाग़ को तरो ताज़गी देने के लिए !

श्री 'भगवत्' जैन लिखित—

॥ देश की आवाज ॥

[रोमांचकारी, वीर-रस-प्रधान, राष्ट्रीय-नाटक]

जिसका एक-एक दृश्य, एक-एक सम्वाद आपकी धमनियों में हाहाकार मचा देगा ! कभी आप रोयेंगे ! कभी हँसेंगे ! कभी अपने भीतर वीरत्व का संचार होता पायेंगे और कभी अपनी बुज़दिली पर शर्म से नीची गर्दन कर लेंगे ! प्लाट इतना आकर्षक है कि पुस्तक को अधूरी न छोड़ सकेंगे ! देश की जलती समस्या का हल, मनोहर देश-भक्ति और हृदय के गाने ! वह सब कुछ है जिसे आप पसन्द करते हैं। छपने की प्रतीक्षा कीजिए ! पृष्ठ लगभग १५० मूल्य होगा—दश या बारह आने !

मिलने का पता—

श्री भगवत्-भवन-पुस्तकालय,

ऐत्मादपुर (आगरा)।

मुद्रक—

कपूरचन्द जैन,

महावीर प्रेस—आगरा।

कुछ

पहली वस्तु में स्वभावतः दोष होते हैं ! मैं इस बात से इनकार नहीं करता कि इस दिशा में, इस तरह की, जैन-समाज के लिये मेरी यह पहली चीज़ है। मुमकिन है इसे आप पसन्द करें।

श्री दि० जैन संघ अम्बाला के माननीय विद्वान पं० सुरेशचन्दजी तथा भजनसागर पं० भैयालालजी की प्रेम-प्रेरणा के फल-स्वरूप यह लिखी गई है।

चरित नायक का 'जीवनचरित्र' बहुत खोजने पर भी आस-पास के किसी पुस्तक-भंडार में न मिला। फिर जो कृति मिली उसी के आधार पर यह प्रयत्न किया गया है। बगैर झिझक के मैं कहूँगा कि प्रस्तुत पुस्तक मेरे ज्यादह अन्वेषण का फल नहीं।

संघ के सुयोग्य मंत्री पं० राजेन्द्रकुमारजी ने पुस्तक को ज़रा लम्बी करने की और गायनाचार्य प्रो० रामानन्दजी ने गायन अधिक देने के लिये सम्मतियाँ दी हैं। अतः मैं आभारी हूँ।

मैंने तो यह सोचा कि छोटी पुस्तक होने से विशेष उपयोगी हो सकेगी। धर्म व्याख्या भर देने से शायद रस की अवहेलना न हो जाए। और 'नमस्कार-चमत्कार' के बाद कथा को आगे ढकेलना कहीं कहानी- तत्त्व की दृष्टि से 'न-कुछ' न बन जाये। राम-रावण युद्ध के बाद पद्म-पुराण में तबियत नहीं लगती, कम से कम मनोरञ्जन प्रेमियों की ! और उसी का जमाना है।

खैर ! जो है वह यह है। आपको अधिकार, चाहे पसन्द कीजिये, चाहे नापसन्द। पसन्द करेंगे तो और प्रयत्न करूँगा, नहीं, समाप्त !

भगवत् भवन
१३-११-३६

आपका बन्धु—
'भगवत्' जैन

'भगवत्' जैन लिखित—

नौ अ-प्रकाशित पुस्तकें

१—'रस-भरी' [कहानी-संग्रह]

२—'चहक' "

३—'चाँदनी' [सरस, कविता-संग्रह]

४—'पुष्प-कण' "

५—'स्मित' "

६—'रेखा' [गद्य-काव्य संग्रह]

७—'लहर' [समस्या-पूर्ति संग्रह]

८—'जय महावीर!' [सामयिक-भजन-संग्रह]

९—'देश की आवाज़' [मौलिक राष्ट्रीय नाटक]

सुविधानुसार शीघ्र प्रकाशित होंगी।

प्रतीक्षा कीजिए।

आत्म-तेज



रचयिता

श्री भगवत् स्वरूप जैन, 'भगवत्'

आत्म-तेज
या
स्वामी समन्तभद्र

कथारम्भ

जिसकी करुणा-कोर से, लेता जग आराम।
उस भुवनेश्वर को प्रथम, श्रद्धा-सहित प्रणाम॥
जिसकी शीतल-ज्योति से, होते हर्ष-विभोर।
उसी चन्द्रप्रभु से लगे, मेरा चित्त-चकोर॥

श्रोताओ! सावधान होकर, चित थोड़ा इधर दीजियेगा।
अपने विकार-मय-हृदयों को, नव-जोवन-दान कीजियेगा॥
एक महा पुरुष का भव्य-चरित, बन्धुओं! तुम्हें बतलाता हूँ।
सुनहरे-काल की पुण्य-कथा, आपके सामने लाता हूँ॥
वह महापुरुष थे योगिराज, श्रद्धा से मस्तक झुकता था।
दर्शन करता था जो सेवक, उसका अभाग्य-फल रुकता था॥
वह वीर भी थे, गम्भीर भी थे, ज्ञायक भी थे विज्ञानी थे।
चारित्र अनूपम था उनका, और जैन-धर्म श्रद्धानी थे॥

आत्म-तेज

उस आत्म--तेज को दिव्य-कला, जग में सर्वत्र बिखरती थी।
दुनियाँ के मायावी जन की, प्रतिदिन सहायता करती थी॥
वह सत्य- अहिंसा के प्रेमी, और विश्व-प्रेम भी पलता था।
उनके मन-मन्दिर के भीतर, करुणा का दीपक जलता था॥
थे शत्रु--मित्र सब एक उन्हें, थी द्वेश-प्रेम की आग नहीं।
दुर्वचनी--से कुछ वैर न था, और पूजक से अनुराग नहीं॥
वह थे विरक्त—तन से, मनसे, दुनियाँ की नाते-दारी से।
नर से, नारी से, भोगों से, दुखसे,—यारों की यारी से॥
बस, आत्म--चिन्तवन के भीतर, सुख का पथ उन्हें दिखाता था।
उस पर ही थी श्रद्धा उनकी, उस से ही सारा नाता था॥
थे कौन ? तपोधन ज्ञान-सिन्धु ! जो अमित गुणों के सागर थे।
आचार्य-प्रवर-सामन्तभद्र के सुखद--नाम से जाहिर थे॥
बस, उन्हीं सूरि सामन्तभद्र का, भव्य चरित कुछ कहना है।
उनके आदर्श--ज्ञान--सर में, प्रमुदित हो--हो कर बहना है॥

दक्षिण-दिश की ओर में 'कांचीपुर' था ग्राम।
रंग-भूमि भी मोद की, या था लीला धाम॥

धर्मोपदेश देते--देते स्वामीजी कांचीपुर आऐ।
उस महापुरुष को देख-देख, नर-नारी मन में हरषाऐ॥
थी सौम्य-मूर्ति, वैराग्य-वेश, साकार शाँति-रस आया हो।
आनन्द--मेघ बरषाने को—घनश्याम गगन में छाया हो॥
सब जन मयूर सम नाच उठे, मन हर्ष-धार में लहराये।
सरिताऐं गाने लगीं गान, फूलों के झुण्ड मुस्कराये॥

पल्लव झुक-झुक कर कहते थे-'स्वागत है पूज्य! इधर आओ।
निर्बल-प्राणों में ओज-तेज, हे नाथ! कृपा कर भर जाओ॥'

अनेकान्त विज्ञान-मय हुए मधुर--व्याख्यान।
स्वामीजी करने लगे जीवों का कल्याण॥

वह न्याय--तर्क पारंगत थे, ज्योतिष-व्याकरण से मण्डित थे।
साहित्य--कलाविद, अलंकार--आगम के पूरे पण्डित थे॥
थे महाधीर मन से पवित्र, उज्वल--चारित्र के धारक थे।
अगणित-गुण-रत्नों के सागर, दुनियाँ के बन्धु सहायक थे॥
सूरज-से प्रभावान थे वह, चांदनी तुल्य सुख—कर्ता थे।
थे पवन सरीखे संग--हीन, जल के समान मल-हर्ता थे॥
था जैसा पावन भव्य वेश, वैसी ही विमल-क्रियाऐं थीं।
थी कभी तपस्या, और कभी, उपदेशिक-धर्म कथाऐं थीं॥

योगिराज के धर्म--मय, जाते थे दिन-रात।
तभी विधाता ने किया भीषण—वज्राघात॥

इस कर्म दुष्ट का जो बयान, हम बतलाऐं वह थोड़ा है।
किसका है अदब किया इसने, किसको चंगुल से छोड़ा है?
सीता को बन का बास दिया, अंजना सती पर ज़ुल्म किये।
कोठी भट कोढ़ी बन कर के, फिरते हैं क़िस्मत लिए-लिऐ॥
वह पाण्डव से विख्यात-पुरुष, दाने-दाने को तरसाऐ।
भक्ताम्बर-कर्ता मानतुङ्ग स्वामी पर गजब-सितम ढाऐ॥
मुनि बादिराज जिनका कि सुयश, अब तक पृथ्वी पर छाया है।
उन पर भी इसने दया न की, दुर्गंधित कर दी काया है॥

इसकी नजरों में बड़ा और छोटा सब एक बराबर है।
करने-भरने का है सवाल जिस जगह वहाँ क्या अन्तर है ?
शुभ-अशुभ कमाया कर्म अटल, फल आगे आकर अड़ता है।
हँसकर या रोकर सहो किन्तु, आखिर तो सहना पड़ता है॥
लेकिन है फ़र्क तो बस इतना, मूरख सहने में रोता है।
विज्ञानी हँसकर कहता हैं—'जो होना है वह होता है॥'

पिछले कर्मों ने किया उन पर शक्ति-प्रयोग।
स्वामी जी को होगया भस्म व्याधि का रोग॥

वह कर्म-रोग के उपशम को ज्यों-ज्यों प्रयत्न करते जाते।
त्यों-त्यों यह निर्दय दुष्ट-कर्म, रख नया रूप आगे आते॥
वह अपने प्रण पर डटा हुआ, यह अपने-पथ पर अड़े हुऐ।
गोया दो सुभट अखाड़े में, थे इम्तहान को खड़े हुऐ॥
थी इधर आत्मिक-आजादी, था उधर आत्मा का बन्धन।
आन्दोलन था इसलिये खड़ा, थे जूझ रहे उत्थान-पतन॥
हा ! भस्म व्याधि का महारोग, जो अमित-कष्ट का दाता था।
हर साँस से 'खाओ' 'खाओ' का चिंता-प्रद-शब्द सुनाता था॥
हम भूख, कहें या महा-भूख, जो शाँति न होने पाती थी।
पल में होता आहार भस्म, फिर इच्छा--नई सताती थी॥
व्रत-संयम पालन कठिन हुआ, आराधन में बाधा आई।
धार्मिक-जीवन में फ़र्क पड़ा, तब मुश्किल उनको दिखलाई॥

स्वामी जी करने लगे मन में तभी विचार।
'करना अब क्या चाहिये, बाधा का उपचार ?

इस जैन-दिगम्बर बेश में तो यह क्रिया-काण्ड सब वर्जित है।
है इस पवित्रता पर कलंक, इसलिये मुझे यह अनुचित है॥
लेकिन इस क्षुधा रोग का तो, मुझको इलाज करना होगा।
जैसे भी होगा किसी तरह, स-विकार-उदर भरना होगा॥
उस धर्म में घुसना हित कर है, इस वक्त में है आनन्द वहीं।
जिस धर्म में ख़ास तरीक़े पर रहना पड़ता पाबन्द नहीं॥
बस, उसी धर्म से मतलब है, जिसमें भोजन की सुविधा हो।
इस वक्त मुनासिब यही मुझे, यह पूरण उदर-समस्या हो॥'

तभी संयमीजी चले तज कांचीपुर बास।
उत्तर दिशा की ओर को, रख मन में विश्वास॥
पुंडोद्धद देखा नगर धन-जन कर भरपूर।
बौध-धर्म के थे जहाँ कुछ आलय-मशहूर॥

यह देख तपोधन ने सोचा—'इस जगह शाँति हो जायेगी।
लोगों की दान-शील आदत, प्रति-दिवस काम में आऐगी॥
बस, इसी कामना को लेकर, एक नूतन-भेष बना डाला।
बन गऐ 'बौद्ध-गुरु' स्वामीजी, लेकर स्वतन्त्रता की माला॥
था बाहर-वेष ढोंग जैसा, लेकिन मन उनका निर्मल था।
था जैन-धर्म का दृढ़ यक़ीन, अन्तर में उसका ही बल था॥
या कहो सीप में मुक्ता था, शशिधर था रजनी अंचल में।
खण्डहर में अतीत-वैभव, या कमल-फूल था दल-दल में॥

बौद्ध-साधु के वेष को अपनाने के बाद।
स्वामीजी के चित्त की, बँधी एक मर्याद॥

लेकिन वह मर्यादा आखिर, कुछ दिन तक ही टिकने पाई।
फिर वही प्रश्न, फिर वही रोग, फिर वही बात आगे आई॥
वह भस्म व्याधि थी आग तुल्य, ले तुष्ट न होती मन चाहा।
जो भी भोजन मुँह में जाता, क्षण-भर में हो लेता स्वाहा॥
भोजन भी कितना सुनो अगर, तो चकित-चित्त हो जाओ तुम।
सौ-पुरुष भी मिल कर डट जाओ, तब शायद निवटा पाओ तुम॥
बतलाओ, इतना आयोजन, किस तरह नित्य हो सकता है?
इसको, इतने से, बहुत बड़े-धोखे की आवश्यकता है॥
जब क्षुधा सताने लगी नित्य, भरपेट न भोजन मिल पाया।
तब स्वामीजी के हृदय बीच, बस, चलने का विचार आया॥
चल दिये उसी पथ पर आगे, आरामकहाँ?-विश्राम कहां?
यदि शाम यहाँ, तो सुबह वहाँ, औरसुबह वहाँ तो शाम यहाँ॥
इस तरह घूमते हुये बहुत, कस्बे, पुर, शहर घूम डाले।
भोजन मिलने के उचित-मार्ग, हर एक तरह देखे—भाले॥
लेकिन हर ओर निराशा थी, आशा का दीपक बुझा हुआ।
था अशुभ कर्म का तीव्र-कोप, उनके प्रयत्न में मिला हुआ॥
जब उदय पाप का होता है, तब पौरुष काम न आता है।
देते हैं आग बुझाने को तो, जल उलटा जल जाता है॥
जो चक्रायुध साकार-शक्ति, त्रय-खण्ड विजय कर देता है।
दुर्दिन आने पर वही चक्र, यश और प्राण हर लेता है॥
लेकिन उद्यम से हट जाना कायरता है, कमजोरी है।
है बेशक यह अपराध-सघन, अथवा ताक़त की चोरी है॥

अतएव निराशा के बादल, को देखन गुरुवर दहलाऐ।
दिल-खोल निराशा-से लड़ने, आशा को ले आगे आऐ॥
'दशपुर' जिसका नाम था, था मनोज्ञ अभिराम।
उसी शहर में आ गये लेते हुऐ विराम॥
भागवत-पंथियों के देखे, मठ ऊँचे-ऊँचे बने हुऐ।
श्रद्धाभी लोगों की देखी,—हैं सब स्वधर्म में सने हुऐ॥
यह दशा देख योगी जी ने, वह बौद्ध-वेष परिहार किया।
इस व्याधि-शाँति के लिये नया, भागवत-वेश स्वीकार किया॥
कामना हृदय लहलहा उठी, जग गई एक नूतन रेखा।
उस मधुर-कल्पना में गुरुने—अपना भविष्य सीमित देखा॥
कुछ दिन तक निभती चली गई, कुछ हद तक दुखकी बला टली।
लेकिन यथार्थ में यह सब भी, माया मरीचिका ही निकली॥
फिर वही समस्या आगेथी,-'भोजन का अब उपाय क्या हो'?
इस कठिन-अवस्थामें आखिर क्या समुचित-सफल व्यवस्था हो?'
जब नहीं सफलता मिली कहीं, तब आगे बढ़ने की ठानी।
लग गये घूमने देश-देश—रखकर कुवेष वृह्म-ज्ञानी॥
था अन्तरंग सम्यक्त स जग, प्रत्यक्ष, ढोंग था बना हुआ।
गोया था कान्तिवान हीरा, कीचड़ मिट्टी में सना हुआ॥
इस तरह भ्रमण करते-करते, गुरु शहर बनारस आते हैं।
शिव-मत उपासकों के भीतर, बेहद उदारता पाते हैं॥
तभी भागवत-साधु का रूप, किया परिहार।
शिवपूजक के वेष को, किया नाथ स्वीकार॥

शिवकोटी था भूपाल वहाँ, जनता का दुख सुनने-वाला।
शिव-भक्त, न्याय-पथ का पंथी, पीता था प्रेम-सुधा-प्याला॥
शिव-मंदिर कितने ही उसने नयनाभिराम बनवाये थे।
उनकी विशालता के ऊपर झण्डे शिव के फहराये थे॥
बस, उन्हीं मन्दिरों के समीप, सहसा स्वामी जी आ-निकले।
देखा जो दृश्य स्वार्थ-साधक, तो भूल गये संकट पिछले॥
लग गये सोचने—"कामयाब कोशिश मेरी ज़रूर होगी।
दुरव्याधि अन्त पालेगी अब, सारी तक़लीफ़ दूर होगी॥"
यह तो वे सोच रहे मन में, थी दृष्टि घूमती इधर-उधर।
यह दैवयोग की बात एक, घटना क्रम पर जा पड़ी नज़र॥

शिवमन्दिर के द्वार से, भोजन का सामान।
पूजक-गण ले जा रहे, अपने-अपने थान॥

शिव-पिण्डी पर जो सरस-मधुर, नैवेद्य चढ़ाया जाता था।
वह सभी, भोग लग चुकने पर, तकसीम कराया जाता था॥
षटरस, व्यंजन मोदक महान, नित राज-लोक से आते थे।
शिवजी के सन्मुख रख करके सब पूजक-गण ले जाते थे॥
यह दृश्य देखकर स्वामीजी के मन में, यह विचार आया।
'इतना भोजन मिल जाने पर हो सकती है निरोग-काया॥'
कह उठी भूख—'रेमन, मूरख! बहती-गंगा में कर धोले।'
बस, तभी दो-क़दम आगे बढ़, गुरुवर उपासकों से बोले॥

'शिव-भक्तो! क्या जानते हो पूजा का अर्थ।
प्रभु-पूजक में चाहिये क्या होनी सामर्थ?

आत्म-तेज

प्रेम-भक्ति के योग से कर प्रभु का अवतार।
निश्चय-पूर्वक ईश को, दे दे जो आहार॥

क्या नहीं बनारस-भर में है, कोई ऐसा समर्थ-शाली?
जो पाखण्डों का खण्डन कर, फैला दे अपनी उजियाली॥
तजकर खुद खाने का प्रयत्न, इस ढोंग की जड़ को हिला सके।
शिव-पिण्डी को इच्छानुसार, जो खाना बेशक खिला सके॥
दिखला कर पिण्डी को भोजन, तुम मिल-जुल कर खा लेते हो।
करते हो अनुचित-कार्य, और राजन् को धोखा देते हो॥'

स्वामीजी के वचन सुन, हुए पुजारी दंग।
क्रोध और अपमान से काँप उठे सब अंग॥

फिर बोले ज़रा व्यंग लेकर—'मत पूछो, शक्ति किन्हीं में है॥
पिण्डी को खाना खिला सको, ऐसी सामर्थ तुम्हीं में है।
तुम शक्ति, भक्ति दोनों ही के, स्वामी-से मालुम पड़ते हो।
है यही बात जो बिना सबब, यों लड़ते और झगड़ते हो॥'

स्वामीजो बोले तभी, ले दृढ़ता की लीक।
'हाँ! मुझ में सामर्थ है, कहते हो तुम ठीक॥

मुझ में वह ताक़त है बेशक, जो खाना सारा खिला सकूँ।
अपने इस कौतुक-भरे कार्य,से तुम सबको तिलमिला सकूँ॥
सुन चकित हुए सारे पूजक, अपने विचार नहीं खोल सके।
कुछ पड़ा प्रभाव-तेज ऐसा, जो एक शब्द नहीं बोल सके॥
कुछ लोग दौड़ते हुए गये, राजा से सब माजरा कहा।
आया है एक विदेशी-गुरु, कौतुक की नदियाँ बहा रहा॥

हम लोग विसर्जन कर पूजा, नैवेद्य को बाहर लाते थे।
प्रति दिन की तरह आज भी हम, अपने घर को ले जाते थे॥
तब तक वह योगी बोल उठा—'यह कैसा ढोंग जमाते हो'?
शिवजी का लेकर नाम, भोग-सामिग्री तुम खा जाते हो॥
यदि सच्चे, भक्त, पुजारी हो, तो ऐसा कर दिखलाओ तुम।
शिवजी के भोजन को स-प्रेम, शिवजी को परस खिलाओ तुम॥'

तब हम लोगों ने कहा—'हम तो हैं असमर्थ'!
वह बोला—"इस काम की, है मुझ में सामर्थ"॥

कहता है छाती ठोंक-ठोंक, खाना मैं इन्हें खिलाऊँगा।
सच्चे-पूजक की ताक़त का, अन्दाज़ा तुम्हें बताऊँगा॥
सुनकर यह प्रोहित का बयान, राजा हैरत में आते हैं।
मन में कौतुहल-जिज्ञासा, दोनों मिल द्वंद मचाते हैं॥
ख़ामोशी में कुछ देर वहीं, बैठे रह कर विचारते हैं।
फिर स्वयं भोग-सामिग्री-युत, शिव-मन्दिर में पधारते हैं॥
मिष्ठान्न और नमक़ीन विविधि, ताज़े-फल, दूध, दही-चीनी।
सुन्दर, स्वादिष्ठ दिव्य-भोजन, जिनमें सुगन्ध भीनी-भीनी॥
कलशों, थालों में भर-भर कर, व्यंजन सब लाये जाते हैं।
जब सब आचुकते हैं तब यों, राजा साहिब फ़रमाते हैं॥

'योगीजी ! तैयार है, भोजन का सामान।
खिला दीजियेगा इसे, कर प्रभु का आह्वान॥'
स्वामीजी बोले तभी, मन्द-मन्द मुसकाय।—
'अभी लीजिये देर क्या, है मुझ को नर राय?'

तब गए शिवालय के भीतर, भोजन-भृंगार मँगाऐ सब।
शिवजी के पास क़रीने से, ख़ुद बतलाकर लगवाऐ सब॥
फिर लोगों को बाहर निकाल, सारे दर्वाजे बन्द किऐ।
तब 'भूख-व्याधि' ने निर्भय हो, बस, मनमाने आनन्द किऐ॥
स्वामीजी खाने को बैठे, भर-पेट आज उनने खाया।
बर्तन खाली कर हटा दिया, और भरा हुआ आगे आया॥
बस, इसी तरह करते-करते, खाली सारे भृंगार किऐ।
उस भूख-रोग के मन माफ़िक, इच्छा भर कर आहार किऐ॥

फिर दर्वाज़ा खोल कर, बाहर आये आप।
खड़े हुये करने लगे, नृप से वचनालाप॥

'खाली बर्तन हैं उन्हें आप, अब बाहर करा दीजियेगा।
यदि छिपा दिया हो भोग कहीं, तो उसको देख लीजियेगा॥'
सुनकर राजा तो मौन रहे, लेकिन कुछ इच्छा-सी पाकर।
पूजक घुस गऐ शिवालय में, दर्शक भी घुसे भड़भड़ा कर॥
कौना-कौना तक खोज लिया, कण एक नहीं लेकिन पाया।
यह देख चकित हो गऐ सभी, नृप को आकर सब बतलाया॥
राजा भी विस्मित हुये बहुत, सोचने लगे अपने मन में॥—
'ऐसी घटना इससे पहिले, है देखी कभी न जीवन में।
इतने भोजन को एक पुरुष, हाँ! कभी नहीं कर सकता है।
कर सकता है वह पुरुष नहीं, सामर्थ-शील देवता है॥
जम गया हृदय में यह यक़ीन, धोखा भी नहीं, नहीं छल है।
भगवन् को भोग खिलाने का, योगी जी में पूरा बल है॥'

ऐसा विचार कर राजाने, स्वामीजी से यह वचन कहा।
'आज से शिवालय का प्रबन्ध, योगी जी शिर आपके रहा॥'
सुनकर राजा के बचन, हुए तपोधन मौन।
जगह शिवालय में उन्हें, फिर मिलजाती क्योंन ?
अब राज-भवन से अधिक-अधिक, नित षटरस-व्यंजन आजाते।
स्वामीजी उससे भस्म-रोग को, सुविधा-रूप बुझा पाते॥
अंजुल के जल की तरह दिवस, धीरे--धीरे बीतने लगे।
उस भस्म-व्याधि को भी ऋषिवर, क्रम-क्रम कर अब जीतने लगे॥
तन का विकार कुछ शाँत हुआ, भोजन भी बचने लगा ज़रा।
गोया भोजन को देख-देख, अब रोग-राज का हृदय डरा॥
यह खबर सुनी जब राजा ने, पूँछने लगे इसका उत्तर।—
'क्यों भोजन बचने लगा नित्य, यह तो कहियेगा—योगीश्वर ?'
तब कहा तपोधन ने—"सुनिऐ, इसका मैं सबब बताता हूँ।
वास्तविक-बात को आगे रख, सारा सन्देह मिटाता हूँ॥
था 'देव' बहुत दिन का भूखा, इसलिये भूख थी बढ़ी हुई।
जितना आया सब हुआ खत्म, दिन एक नहीं गड़बड़ी हुई॥
लेकिन वह उसकी 'महा-भूख' अब 'भूख'-सी बनती जाती है।
जितने की इच्छा होती है, उतना ही खाना खाती है॥
बस, इसी तौर से वह आखिर, प्राकृतिक-रूप अपनाऐगा।
जितना मनुष्य का भोजन है, उतना ही खाना खायेगा॥"
सुन कर महीप बोले—'बेशक, योगीश्वर बात मुनासिब है।
बढ़ जानी क्षुधा उचित है तो, घटजाना उसका सम्भव है॥'

इस तरह शिवालय में रहते, छह-महीने उनको बीत गए।
इन छह महीनों में स्वामीजी, भी भस्म-व्याधि से जीत गए॥
आता खाना तो उतना ही, लेकिन अब सभी पचा पाता।
बस, मात्र मनुष्याहार तुल्य, खाना उसमें से घट जाता॥

यह देखा तब पूजकों, में फैला सन्देह।
भोजन से क्यों घट गया, प्रभुजी को स्नेह?
तभी सोच यह एक दिन, खड़ा किया उत्पाद।
आया आज विवेक कुछ, छह-महीने के बाद॥

या कहो ढोंग बीमार हुआ, देखने मृत्यु उसको धाई।
या काठ की हाँडी चूल्हे पर, दोबारा चढ़ने को आई॥
छिप रहा एक जन वहाँ, जहाँ पानी आने का मोखा था।
दिखलाई पड़ता साफ़ साफ़, जिस थल से पूरा धोखा था॥
जासूस देखने लगा उधर, दम साध के आँखें गढ़-गढ़ा।
जो दृश्य दिखाई पड़ा उसे, वह देख के उसको चौंक पड़ा॥
बस, देख के भागा फौरन ही, जाकर राजा को बतलाया।
"हे नाथ! देखकर आया हूँ, मैं अभी पुजारी की माया॥
वह योगी, ढोंगी, छलिया है, कुछ प्रभु को नहीं खिलाता है।
आराम से बैठा मन्दिर में, ख़ुद ही वह खाना खाता है॥"
इतना सुनते ही राजा के, उर क्रोध की दाहक-आग उठी।
धोखा खाने की प्रति हिन्सा, बेख़ौफ़ हृदय में जाग उठी॥
मन में विचारने लगे भूप,—"मेरी भी बड़ी मूर्खता थी।
सच मान लिया उसको मैंने, जो धोखा और धूर्त्तता थी॥"

चल दिये महीपति उसी समय, अविलम्ब क्रोध से तने हुऐ।
आये शिव-मन्दिर में मानों, साकार रौद्र-रस बने हुऐ॥
बोले—बर्षाते हुये आग—"रे! योगी दुष्ट-राज है तू।
झूठों का बादशाह है तू, धूर्तों में धूर्तराज है तू॥
तेरे इस ठग पन ने मन में, असमय में प्रलय मचा दी है।
जल से जो नहीं शान्ति होती, ऐसी ज्वाला भड़का दी है॥
है धर्मद्रोह तेरा बाना, शिवमत का नहीं उपासक है।
ठगियों का तू गुरु-भ्राता है, छलियों के दल का नायक है॥
इच्छा-भर भोजन कर लेना, इससे ज्यादह है काम नहीं।
मालूम हुआ है मुझे कि तू, करता तक इन्हें प्रणाम नहीं॥'

स्वामी जी सुनते रहे, शान्ति-भाव के साथ।
बोले फिर मीठे वचन—"सुनिएगा नर नाथ॥

इस देव में इतनी शक्ति नहीं, मेरी वन्दना सँभाल सके।
छिप रही भक्ति जो भीतर है, बाहर यह उसे निकाल सके॥
वह राग-द्वेष मल से मलीन, वासना आग में तीखा है।
इसलिये नहीं विशेषता है, साधारण पुरुष सरीखा है॥
जो राग-द्वेष से मुक्त हुआ, है दूर अठारह दोषों से।
दुनियाँ की माया से छूटा, माया के स्वप्न-भरोसों से॥
जगमगा उठीं जिसके भीतर, विज्ञान-सूर्य की रेखाऐं।
सब भस्म बन चुकीं हैं जिसकी, विधना-कृत कुटिल कालिमाऐं॥
उस प्रखर ज्ञान-बलसे जिसको, सब लोक-अलोक दिखाता है।
बस, वही देव, जैनेन्द्र-देव मेरा, प्रणाम सह पाता है॥"

सुने महीपति ने सभी स्वामी जी के बैन।
किन्तु नहीं मन को मिला, किसी तरह का चैन॥
एक नया उर में उठा, कौतुकमय-हठवाद।
फिर बोले यों—कुछ समय, चुप रहने के बाद॥

"तुम करो प्रणाम स-भक्ति इन्हें, देखेंगे क्या हो जाएगा ?
होगा वह आगे ही होगा, जो होगा, देखा जाएगा॥"
तब कहा संयमी जो ने फिर,-"यह हठ न काम में आयेगी।
मेरे प्रणाम करते ही यह, पिण्डी फ़ौरन फट जाएगी॥
फिर दोष न मुझे दीजियेगा, कहियेगा—'तुमने कहा नहीं।'
पूजक की गई बन्दना भी, और शेष रहा देवता नहीं॥"

सुनकर गुरुजी के वचन, फिर बोले अवनीस।—
"जिसे कह चुका कीजिए, उसको अब योगीश॥

इस व्यर्थ बहानेबाज़ी से, मत अपना पिण्ड छुड़ाइयेगा।
पिण्डी के फट जाने का डर, दिखला कर नहीं डराइयेगा॥
हो जाए प्रलय विश्व-भर में, आकाश से भूमि चिपट जाए।
पिण्डो ही क्यों ? यह सकल-धरा देकर दहाड़-सी फट जाए॥
इस सब की चिन्ता मुझे नहीं, चिन्ता है उसको हटा सकूँ।
ताक़त प्रणाम की जान सकूँ, और कौतुक अपना मिटा सकूँ॥
इसलिए आपसे कहना है, वचनों पर ध्यान दीजिएगा।
आश्चर्य-जनक अपना प्रणाम, योगीश्वर इन्हें कीजिएगा॥"

नृप का आग्रह देखकर, बोले—"करुणाधार।
नमस्कार की बात को, करता हूँ स्वीकार॥

कल सुबह करूँगा नमस्कार, सब लोग आप आ जाइयेगा।
ताक़त प्रणाम की, पिण्डी की, दोनों की आज़माइयेगा॥
उस ओर तेज देवता का, इस ओर मनोबल भक्त का है।
दोनों का जोड़ बराबर है, दोनों ही का—मुक़ाबिला है॥
निश्चय जब बात हुई 'कल' पर—तब मजलिस सारी ध्वस्त हुई।
सूरज भी पहुँचा दूर देश—सुनहरी-धूप भी अस्त हुई॥
अब हुई रात, नभ-मण्डल पर, फैली शशिधर की उजियाली।
तब हर्ष-चित्त जमकर बैठे, स्वामीजी आत्मिक-बलशाली॥
जिस पर थी सुदृढ़ आत्म-श्रद्धा, जो सबसे ज्यादह प्यारा था।
गुण-गान उसीका—शुरू किया, अब जिसका उन्हें सहारा था॥
बस, उसी भक्त में लीन हुये, जो अमित-फलों की दाता है।
जिस भक्ति की महिमा के आगे, गरदन संसार झुकाता है॥
तन की सारी सुधि-बुधि भूले, गुण-गान में ऐसा चित्त लगा।
प्रतिभा का सूर्य, सतेज हुआ, प्रभु-भक्ति का सागर-सा उमगा॥
'स्त्रोत्र स्वयंभू' नामक तब, गम्भीर भाव-अर्थ वाला।
श्रुत प्रिय, मनोज्ञ, रस-पूर्ण, दिव्य-भाषा में गुरु ने रच डाला॥
गुरुजी के भक्ति पूर्ण- कीर्तन, ने ऐसी ताक़त दिखलाई।
जिन शासन-भक्त अम्बिकातब, भू-तल से खिंची चली आई॥
बोली—'योगीद्र ! करो आज्ञा, तब गुरु ने उसको बतलाया।—
"कल शिव-पिण्डी के बन्दन का, निश्चयहूँ नृप से कर आया॥
बस, जिन-मत की प्रभावना हित, मेरे वचनों का पालन हो।
यह इच्छा है जय जैन की हो, और मिथ्या-धर्म निवारण हो॥"

यह भव्य भावना गुरु की सुन, देवी बोली-"चिन्ता क्या है ?—
कह चुका जैन-गुरु जिसे, नहीं वह हर्गिज़ भी टल सकता है ॥
टल जाये सूरज गर्मी से, और शीतलता से चाँद टले।
मर्यादा सिन्धु छोड़ बैठे, और पश्चिम से सूरज निकले ॥
सम्भव है यह सब होजाये, इसमें विष्मय न मुनासिब है।
निर्ग्रन्थ-साधु के बचन टलें, यह भूल है और असम्भव है ॥

कह 'तथास्तु' देवी गई, नमि गुरु को निजलोक।
उसी समय आकाश में, फैल उठा आलोक ॥

हो गया प्रभात कमल फूले, चिड़ियों ने नभ को चहकाया।
संसार उठा उद्यम करने, अवनी ने नवजीवन पाया ॥
पत्ते-पत्ते पर खेल उठी, दिनकर की सोने-सी छाया।
कुसुमों ने पवन हृदय में भर,—मकरन्द भूमि पर बरसाया ॥
मधुकर होकर आज़ाद लगे, रसभरे प्रेम पूरित गाने।
तितलियाँ नाचने लगीं और, लतिकायें लगी मुस्कराने ॥

तभी शिवालय में उधर, दर्शक-दल का झुण्ड।
उमड़ पड़ा इस जोर से, सागर-सा नर मुण्ड ॥

लोगों में इसकी चर्चा थी, हर मुँह में यही कहानी थी।
'कौतुक दिखलाई पड़े शीघ्र' जनता इसलिऐ दिवानी थी ॥
जाती थी नज़र जिधर उठ कर, बस, भीड़भाड़ दिखलाती थी।
सड़कें थी बन्द हवा भी तो, मुश्किल से आती-जाती थी ॥
आँखों में भरी लालसा थी, सब हृदयों में कौतुहल था।
कितने अधीर थे लोगबाग ? यह बतला सकना मुश्किल था ॥

'क्या होगा ?' 'किसकी हारजीत ?' इस फेर ने सबको घेरा था।
मन के उपवन में अचरज का, तन चुका किले-सा डेरा था॥
यद्यपि भीतर का देव द्वार, तक अभी नहीं खुलपाया था।
फिर भी दर्शक-दल जगह-जगह, टीड्डी के दल-सा छाया था॥
बस, उसी समय राजा साहिब भी, धूम धाम से आते हैं।
जो जगह मुकर्रिर थी उस पर, सह परिषद् के जम जाते हैं॥
थे साथ में तांत्रिक, मांत्रिक भी, शिव मत के बड़े ज्ञान धारी।
पण्डित, प्रोहित, विद्वान सचिव, थे सारे राज कर्मचारी॥
सोचने लगे राजा साहिब,—'यह बात न होने काबिल है।
कह देना तो है सरल, मगर कर दिखला देना मुश्किल है॥
फटजाएँ मूर्ति बन्दना से, करना यक़ीन—मूर्खता है।
मालुम होता है योगी की यह भी एक आज—धूर्तता है॥'
थे इन्हीं विचारों में तब तक वह देव द्वार खुल जाता है।
निर्भय, मृगपति की तरह साधु मुस्काता उन्हें दिखाता है॥
था दिव्य-तेज मुख-मण्डल पर, आँखों में मधुर-सौम्यता थी।
गोया प्रवाह में वेग-शील, आकर्षण मण्डित सरिता थी॥
उस दिव्य-तेज को लिये हुये, स्वामीजी बाहर आते हैं।
ज्यों दिन-पति हरने अन्धकार, तशरीफ़ गगन पर लाते हैं॥

भू-पालक बोले तभी, सुनिये कृपा-निधान !
अपने बचनों पर जरा, शीघ्र दीजिऐ ध्यान॥

अब समय हुआ प्रण पालन का, योगीश प्रणाम कीजिऐगा।
अपने प्रणाम की ताक़त को, जनता को दिखा दीजिऐगा॥

बोले तब गुरुजी मधुर-वचन, 'नरनाथ! अभी लीजिऐगा।
करता हूँ मैं प्रणाम-वन्दन, सब लोग ध्यान दीजिऐगा॥
लेकिन प्रणाम से पहिले अब, फिर वही बात दुहराता हूँ।
'फट जाऐगी पिण्डी निश्चय, इसकी फिर याद दिलाता हूँ॥
मेरे प्रणाम को सहजाये, है इतनी इसमें शक्ति नहीं।
स-विकार मूर्ति सह सकती है सच्चे पूजक की भक्ति नहीं॥"
इतना सुन बोल उठे नरपति,-'कहने का उचित प्रभाव नहीं।
कर दिखला कर ही सिद्ध करो, है किधर तेज या ताव नहीं?
तब उठे, खड़े होगऐ साधु, शिवपिण्डी के आगे जाकर।
वह सरस, भक्ति से पूर्ण, मधुर-स्तवन लगे पढ़ने गा कर॥
था जन-समूह इस समय शान्त, जैसे मन्त्रों से कीलित हो।
थी दृष्टि एकटक और हृदय, बन बैठा जैसे सीमित हो॥

स्वामीजी करने लगे, वीतराग का ध्यान।
भक्ति-पूर्ण स्वर से तभी, प्रभुजी का गुणगान॥

—गायन—

तेरी महिमा को भगवान।
नहीं गा सकता है इन्सान॥
तूने राग-द्वेष को टाला।
जिससे मिला तुझे उजियाला॥
तब तू बना पवित्र महान्॥ नहीं०

आत्म-तेज

ऋषभ अखिल-लोक का लेकर।
दुर्लभ-ज्ञान सुधारस देकर॥
कितना किया विश्व-कल्याण ॥नहीं०
तू है भव-दुखियों का त्राता।
आत्मिक-सुखमय जीवन दाता॥
तेरा जग में व्यापक ज्ञान ॥नहीं०॥
कर दे उर का दूर अन्धेरा।
तुझको नमस्कार है मेरा॥
'भगवत' कर यह कृपा-प्रदान ॥नहीं०

स्वामीजी तो भक्ति में, थे हर तरह निमग्न।
उसी समय नरनाथ ने, ध्यान कर दिया भग्न॥

बोले नरेश—'योगीन्द्र जरा, गर्दन भी अब झुकाइयेगा।
केवल इस भक्त-पाठ को ही, अविरल पढ़ते न जाइयेगा॥
लालायित नजरें इधर-उधर, सब ओर से आकर अड़ी हुईं।
देखने नमन की ताक़त को, जनता है सारी खड़ी हुई॥
चौबीस मान्य अवतारों का 'स्तवन स्वयंभू' भक्ति-प्रवर।
पढ़ते जाते थे योगिराज, हार्दिक-भावों में लय हो कर॥
जब टोका नृप ने रुके तभी, तब चन्द्रनाथ संस्तवन था।
गर्दन को झुका प्रणाम करो, अब नृपका यही दृढ़-बंधन था॥

तभी तपोधन ने किया, गर्दन झुका प्रणाम।
शिव-मंदिर में हो गया, तब अचरज का काम॥

जैसे ही गर्दन झुकी इधर, गोया उस तरफ तोप छूटी।
टुकड़े-टुकड़े हो बिखर गई, इस बुरी तरह पिण्डी फूटी॥
उस जगह सूर्य-सी तेजवान, एक ज्योतिराशि जगमगित हुई।
आठवें-पूज्य श्री चन्द्रनाथ की, मूर्ति तभी अवतरित हुई॥
यह देख सभी जन दङ्ग रहे, क्षण भर को सबका रुका गला।
फिर हर ज़ुबान से एक साथ, 'जय-जय' बस यही, शब्द निकला॥
जय-ध्वनि से गूंज उठा अम्बर, नर-नारी सारे चकित हुए।
आनन्दित हुए यतीश्वर भी, राजा साहिब भी मुदित हुए॥
चहरों पर था आश्चर्य-भाव, लोगों के हृदय प्रभावित थे।
जैनत्व-सत्यता पर मोहित, थे जो भी वहाँ उपस्थित थे॥

स्वामीजी करते रहे, प्रभुजी का गुणगान।
मधुर-स्वरों में जब हुआ, भक्ति-पाठ अवसान॥

तब सिंह गर्जना के समान, स्वामीजी बोले अभय वचन।
'है यही मूर्ति जो सह सकती है मेरा दृढ़-प्रणाम-बंदन॥
सच्चे सुख का अभिलाषी है, वह इसको शीश झुकाता है।
निर्ग्रन्थ रूप है सौम्य मूर्ति, वासना रहित सुख-दाता है॥

तब नरपति कहने लगे, होकर हर्ष विभोर?
मुझ पर भी अब कीजिए, अपनी करुणा-कोर॥

हो महा-पुरुष यह तो जाना, योगी, सामर्थ, मौन हो तुम।
लेकिन अब यह बताइएगा, इस छद्म-वेष में कौन हो तुम?
तब बोले स्वामीजी-'राजन्, मैं क्या हूँ?-विप्र विद्यार्थी हूँ।
इस मञ्जुल-मूर्ति का प्रेमी हूँ, इस देव का तुच्छ पुजारी हूँ॥

जब उदय पाप का आया तो, तन भस्म-व्याधि का रोग हुआ ।
लाचारी ने मजबूर किया, इसलिए ढोंग संयोग हुआ ॥
अब दूर हो चुका ढोंग-समय, अपने स्वरूप पर आता हूँ ।
प्रभु के निर्ग्रन्थ-रूप को फिर, मैं अपना रूप बनाता हूँ ॥"
इतना कह सारे ढोंग-वस्त्र, तन से उतार कर जुदा किए ।
हो गये दिगम्बर तब सबने, 'जय-जय' के नारे लगा दिए ॥
दे दीप्यमान् हीरा गोया, कीचड़ से निकल चमचमाया ।
या कहो घटायें तोड़-फोड़, सूरज का बिम्ब निकल आया ॥
कह उठे लोग सब धन्य-धन्य, वैराग्य का ऐसा रस छाया ।
जीवन में ऐसा पुन्य-समय, लोगों ने प्रथम बार पाया ॥

जैन-धर्म की देख कर, ऐसी अनुपम शक्ति ।
शिवकोटी नृप होगये, तब संसार विरक्त ॥

बोले–'पृथ्वीपति ! दया करो, भव-बन्धन काटि गिराओ तुम ।
मैं डूब रहा हूँ गहरे में, अब मुझको राह दिखाओ तुम ॥'
सुन नृप के उचित वचन गुरुवर, बोले–"विचार तो अच्छा है ।
संसार से डरने वालों को, यह शरण भगवती-दीक्षा है ॥'
बस, तभी नृपति ने वस्त्र हटा, वह पूज्य रूप स्वीकार किया ।
वासना-भरा संसार त्याग, केशों का भी परिहार किया ॥
यह देख अनेकों विज्ञ-पुरुष, करने सराहना लगे जहाँ ।
कितने ही भोग त्याग कर जन, प्रभु आराधन में लगे वहाँ ॥
मित्रो ! इस तरह आत्म-बल से, झंडा दुनियाँ में फहराया ।
क्या शक्ति है सत्ये-पूजक में, यह कर दिखला कर बतलाया ॥

स्वामी समन्तभद्रजी का यह, चरित हमें बतलाता है।
हम भूल न जायें आत्म-तेज, जो सुख की ओर बढ़ाता है॥
आयें विघ्नों-पर-विघ्न नित्य, लेकिन हम हँस-हँस कर सहलें।
अपने पथ से, प्रणसे, श्रद्धा से कभी स्वप्न में भी न टलें॥
प्रिय श्रोताओ! इस कथा-पाठ से, हृदय कालिमा को धोलो।
"भगवत्" रख भक्ति-भावना को, श्री जैन-धर्म की जय बोलो॥

कथा वाचकों से—

कथा को सरस बनाने के लिये अपनी सुविधानुसार, प्रसंग-वश निम्न गायनों का भी प्रयोग कीजिये।

प्रार्थना नं० १

जग-जाल से नाथ निकालो हमें।
हम आपके दास, सँभालो हमें॥

दुनियाँ में दयालू कहावे हो तुम।
सुख-राह पै विश्व को लाते हो तुम॥
अखिलेश हो तुम, मत टालो हमें। हम०

हमें ज्ञान का, ध्यान का होश नहीं।
गफ़लत का ज़रा अफ़सोस नहीं॥
हम डूब रहे हैं, बचालो हमें। हम०

तुम बन्धु हो, मित्र, सखा हो तुम्हीं।
'भगवत्' हो तुम्हीं, सुखदा हो तुम्हीं॥
हम दुष्ट हैं किन्तु, निभालो हमें।
हम आपके दास सँभालो हमें॥

बन्दे-जिनवरम् नं० २

नाल-ए फ़रियाद की तसबीर बन्दे जिनवरम्।
वीर-सन्तानों की है जागीर बन्दे जिनवरम्॥
मर्ज़े-दुनियाँ से शिफ़ा करने की है ये ही दवा—
सिफ़दा कहलो या कहो तद्बीर बन्दे जिनवरम्॥
कैफ़ियत जिसकी अहिंसा कह रही ये गूंज कर—
आज रोशन होगई तासीर बन्दे जिनवरम्॥
इल्तिजा के इस से बढ़ कर और क्या अल्फ़ाज़ हों—
सीधी-सादी पुर असर तक़रीर बन्दे जिनवरम्॥
अए दिले 'भगवत्' गुलामी छोड़, आँखों देखले—
काट देता कर्म की जंजीर बन्दे जिनवरम्॥

अहिंसा नं० ३

तकलीफ़ न दो यार! जमाने में किसी को।
माना है धर्म सब से बड़ा जग में इसी को॥
बतला दो सभी को॥

ताक़त है इसलिए कि हो ग़ैरों की भलाई।
क्यों उसको मिटा दे रहे बनने में कसाई॥
रख दिल में रहम, रोक दो क़ातिल की छुरी को। माना०
रोता है जिगर थाम तू छोटी-सी सज़ा से।
फिर क्यों न कोई काँप उठे अपनी क़ज़ा से?
बदनाम न हो अपनी बना, सब की .खुशी को। माना०
तू सोच हमेशा यही—दुनियाँ का भला हो।
.जुल्मो-सितम के पाप से हर शख्श रिहा हो॥
अपनाले पाक़--दिल से, तू नेकी की गली को। माना०
जो वीर के फ़रमान को तू दिल में धरेगा।
तो झण्डा तेरे नाम का दुनियाँ में फिरेगा॥
पहिचान ज़रा ग़ौर से 'भगवत्' तू .खुदी को। माना०

चेतावनी नं० ४

सब दुनियाँ है ग़ैर! बाबा, सब दुनियाँ है ग़ैर।
झूँठे जग की नाते दारी,
अपने मतलब की सब यारी।
आँखें मुँदते करते ख्वारी,
साथ न चलने की तैयारी॥
कोई घर कोई मसान तक,
कोई दो, दश पैर। बाबा०

आत्म-तेज

जब मसान में उसको लाते,
ख़ूब तलाशी ले अज़माते।
अपने हाथों आग लगाते,
हाय ! न दिल में कुछ शरमाते ॥
बाँस मार सिर पर निकालते,
जाने कब का बैर ? बाबा०

दो-दिन का बस रोना धोना,
छोड़ो रंज यही था होना।
फिर नाहक़ क्यों टाइम खोना,
खाना, पीना, हँसना, सोना।
भूले उसकी याद, मनाते,
अपनी - अपनी ख़ैर ! बाबा०

क्या तूने अबतक पहिचाना,
दुनियाँ एक मुसाफ़िर खाना।
जारी हरदम आना-जाना,
है फ़िज़ूल बस, प्रेम बढ़ाना ॥
'भगवत्' ख़ुद को समझ अकेला,—
कर तू ख़ुद की शैर। बाबा सब दुनियाँ है ग़ैर ॥